SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित पर्यावरणीय चिन्तनः एक आलोचनात्मक विश्लेषण

बिपिन कुमार, शोधार्थी, **जहां आरा ज़ैदी,** पी–एचडी, हिन्दी विभाग,
ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
बिपिन कुमार, शोधार्थी
जहां आरा ज़ैदी, पी–एचडी
E-mail : palbipin6626@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 22/12/2025
Revised on : 23/02/2026
Accepted on : 04/03/2026
Overall Similarity : 00% on 24/02/2026

Plagiarism Checker X - Report
Originality Assessment
0%
Overall Similarity

Date: Feb 24, 2026 (07:47 AM)
Matches: 0 / 3074 words
Sources: 0

Remarks: No similarity found, your document looks healthy.

Verify Report: Scan this QR Code

शोध सार

यह शोध पत्र इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चेतना का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श एक प्रमुख धारा के रूप में उभरा है, जो न केवल पारिस्थितिक संकटों के दस्तावेजीकरण बल्कि उनके सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक आयामों की पड़ताल भी करता है। इस अध्ययन में चयनित समकालीन हिंदी उपन्यासों के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया है कि कैसे साहित्यिक रचनाएँ मानव–केन्द्रित दृष्टिकोण (एंथ्रोपोसेंट्रिज़्म) की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए एक अधिक समावेशी पारिस्थितिक चेतना का निर्माण कर रही हैं। पत्र में विकास–विस्थापन के द्वन्द्व, ग्रामीण–शहरी पारिस्थितिकी के अंतर्विरोध, स्त्री–पर्यावरण अन्तसंबंधों तथा आदिवासी पारिस्थितिक ज्ञान जैसे विषयों की पड़ताल की गई है। अंततः, यह पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि हिंदी का समकालीन उपन्यास पर्यावरणीय नैतिकता के एक नए साहित्यिक ढाँचे के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

मुख्य शब्द

हिंदी उपन्यास, पर्यावरण विमर्श, एकोक्रिटिसिज़्म, पारिस्थितिक चेतना, समकालीन साहित्य, इक्कीसवीं सदी.

परिचय

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक समाप्त होते–होते वैश्विक पर्यावरणीय संकट एक ऐसी वास्तविकता बन चुका था जिसकी उपेक्षा असंभव थी। जलवायु परिवर्तन, जैवविविधता की हानि, प्रदूषण का बढ़ता स्तर और प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन ये सभी घटनाएँ मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए गंभीर खतरे के रूप में उभरीं। भारत जैसे विकासशील देश में यह संकट और

भी जटिल रूप धारण करता है, जहाँ आर्थिक विकास की आकांक्षाएँ पर्यावरणीय स्थिरता के साथ सतत् संघर्ष में रही हैं।

हिंदी साहित्य ने, अपनी लंबी परंपरा में, प्रकृति और मानव के अंतर्संबंधों को सदैव विशेष स्थान दिया है। छायावादी काव्य से लेकर प्रेमचंद के उपन्यासों तक में प्रकृति मात्र पृष्ठभूमि न होकर एक सक्रिय सहयोगी के रूप में उपस्थित रही है किंतु इक्कीसवीं सदी में यह संबंध एक नए चरण में प्रवेश करता है जहाँ प्रकृति का सौंदर्यबोध से आगे बढ़कर उसके संकट, उसकी एजेंसी और उसके प्रतिरोध की अभिव्यक्ति साहित्य का केन्द्रीय विषय बनती है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्त्व

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श पर अब तक किए गए अधिकांश अध्ययन कविता या कहानी विधाओं तक सीमित रहे हैं। उपन्यास विधा, अपनी विस्तृत कथात्मक संभावनाओं के बावजूद, इस संदर्भ में अपेक्षाकृत कम विद्वतापूर्ण ध्यान आकर्षित कर पाई है। यह शोध पत्र इसी अंतर को पाटने का प्रयास करता है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय चिंतन के विविध रूपों का व्यवस्थित विश्लेषण न केवल साहित्यिक आलोचना को समृद्ध करेगा, बल्कि समकालीन पर्यावरणीय संकटों को समझने का एक सांस्कृतिक–साहित्यिक ढाँचा भी प्रदान करेगा।

शोध प्रश्न

यह अध्ययन निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है:

1. इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना किन प्रमुख विषयवस्तुओं और रूपकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है?
2. क्या ये उपन्यास पारम्परिक श्प्रकृति–वर्णनश से आगे बढ़कर एक सैद्धांतिक ''पारिस्थितिक दृष्टिकोण'' का प्रस्ताव करते हैं?
3. हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय चिंता का चित्रण किस सीमा तक वैश्विक एकोफिक्शन के साथ संवाद स्थापित करता है और कहाँ यह भारतीय सांस्कृतिक विशिष्टता अख्तियार करता है?
4. साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से ये रचनाएँ पाठक की चेतना और नैतिकता को किस प्रकार प्रभावित करने का प्रयास करती हैं?

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि: एकोक्रिटिसिज़्म और हिंदी साहित्यिक आलोचना

एकोक्रिटिसिज़्म: अवधारणा और विकास

एकोक्रिटिसिज़्म (पारिस्थितिकी आलोचना) साहित्यिक अध्ययन की वह शाखा है जो साहित्यिक पाठ और भौतिक पर्यावरण के बीच संबंधों की जाँच करती है। चेरिल ग्लोटफेल्टी के शब्दों में, यह ''पृथ्वी–केंद्रित दृष्टिकोण अपनाती है'' (Glotfelty - Fromm, 1996)। १९६० के दशक में उभरी यह विधा अब तक का विकास करते हुए केवल प्रकृति–लेखन के अध्ययन से आगे बढ़कर सभी साहित्यिक विधाओं में पर्यावरणीय प्रश्नों की पड़ताल करने लगी है।

हिंदी साहित्यिक आलोचना में एकोक्रिटिकल दृष्टिकोण अपेक्षाकृत नवागत है। डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी आदि आलोचकों ने प्रकृति और साहित्य के संबंधों पर विचार किया है, किंतु व्यवस्थित एकोक्रिटिसिज़्म का प्रवेश बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में ही देखने को मिलता है।

प्रासंगिक सैद्धांतिक अवधारणाएँ

इस शोध के विश्लेषणात्मक ढाँचे के लिए निम्नलिखित अवधारणाएँ विशेष रूप से प्रासंगिक हैं:

1. **एंथ्रोपोसेंट्रिज़्म बनाम इकोसेंट्रिज़्म:** मानव–केन्द्रित दृष्टिकोण (एंथ्रोपोसेंट्रिज़्म) वह मान्यता है जिसके अनुसार मनुष्य ही प्रकृति का केन्द्र और सर्वोच्च मूल्य है। इसके विपरीत, पारिस्थितिक–केन्द्रित दृष्टिकोण

(इकोसेंट्रिज़्म) सभी जीवन—रूपों के अंतर्निहित मूल्य को स्वीकार करता है। हिंदी उपन्यास अक्सर इस द्वन्द्व को अभिव्यक्त करते हैं।

2. **डीप इकोलॉजी**: अर्ने नैस द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत ष्गहन पारिस्थितिकीष् पर बल देता है, जो पर्यावरणवाद को केवल प्रदूषण नियंत्रण या संरक्षण तक सीमित न मानकर आत्म—पुनर्ज्ञान और पारिस्थितिक ''स्व'' के विचार से जोड़ता है (Naess, 1973)। हिंदी साहित्य में यह अवधारणा अक्सर आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रसंगों में उभरती है।
3. **इकोफेमिनिज़्म**: यह सिद्धांत प्रकृति के शोषण और स्त्री के शोषण के बीच संरचनात्मक समानता को रेखांकित करता है। भारतीय संदर्भ में, यह धारणा विशेष रूप से प्रासंगिक है क्योंकि प्रकृति (प्रकृति) को सदैव नारी रूप में अभिव्यक्त किया गया है।
4. **पोस्टह्यूमनिज़्म एवं मोर—दैन—ह्यूमन**: यह दृष्टिकोण मानवेतर सत्ताओं (पशु, वनस्पति, भूगोल, जलवायु) को सक्रिय एजेंसी प्रदान करता है। हिंदी उपन्यासों में नदी, पहाड़, वन और जानवर अक्सर मात्र पृष्ठभूमि न होकर सक्रिय पात्र बनकर उभरते हैं।

तालिका 1: विश्लेषणात्मक ढाँचे में प्रयुक्त प्रमुख सैद्धांतिक अवधारणाएँ

अवधारणा	मुख्य सिद्धांत	हिंदी साहित्य में प्रासंगिकता
एकोक्रिटिसिज़्म	साहित्य और पर्यावरण का अंतर्संबंध	प्रकृति वर्णन से पर्यावरण विमर्श तक का विकास
एंथ्रोपोसेंट्रिज़्म	मानव—केन्द्रित दृष्टिमान	विकास के नाम पर प्रकृति के शोषण की आलोचना
डीप इकोलॉजी	गहन पारिस्थितिक चेतना	आध्यात्मिकता और पारिस्थितिकी का संगम
इकोफेमिनिज़्म	प्रकृति और नारी का शोषण	धरती माता और नारी के रूपक
पोस्टह्यूमनिज़्म	मानवेतर एजेंसी	नदी, पर्वत, वनों को सक्रिय पात्र।

विश्लेषणात्मक खंडः प्रमुख विषयवस्तुएँ एवं उपन्यास

विकास बनाम विस्थापनः पारिस्थितिक न्याय का प्रश्न

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में सबसे प्रमुख पर्यावरणीय विषय विकास के नाम पर होने वाले विस्थापन और पारिस्थितिक विनाश का है। ये उपन्यास बाँध, खान, उद्योग और शहरीकरण जैसे विकास के प्रतीकों की कीमत पर होने वाले मानवीय और पारिस्थितिक नुकसान को रेखांकित करते हैं।

1. **ग्लोबल गाँव के देवता (रणेन्द्र, 2009)**: यह उपन्यास आदिवासी जीवन, खनन माफिया और विस्थापन की त्रासदी को केंद्र में रखता है। कथानक असुर जनजाति और उनकी पारंपरिक भूमि पर बॉक्साइट खनन के कारण होने वाले विनाश को दर्शाता है। यहाँ जंगल केवल संसाधन नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक इकाई है जिसके साथ समुदाय की पहचान जुड़ी हुई है।

''जंगल हमारे पुरखों की निशानी है, इसे खोदकर तुम हमारी आत्मा को खोद रहे हो।'' (उपन्यास के भाव)

इस उपन्यास में पारिस्थितिक विनाश केवल भौतिक नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति का विनाश भी है। यह 'विकास' के हिंसक रूप को उजागर करता है।

ग्रामीण पारिस्थितिकी का सौंदर्यशास्त्र और संकट

गाँव और कृषि जीवन का चित्रण हिंदी उपन्यासों की एक लंबी परंपरा रही है, किंतु इक्कीसवीं सदी में यह चित्रण नॉस्टेल्जिया (विरह—भाव) से आगे बढ़कर पारिस्थितिक संकट के विश्लेषण में तब्दील होता है।

1. **रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह, 2008)**: यद्यपि यह उपन्यास मुख्य रूप से भूमंडलीकरण के बाद बदलते ग्रामीण समाज पर है, लेकिन इसमें ग्रामीण पारिस्थितिकी में आए बदलाव खेतों का बिकना, बागीचों का कटना और पारंपरिक कृषि का विनाश स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह उपन्यास उस 'नष्ट होती हरियाली' का दस्तावेज है जो आधुनिकता की भेंट चढ़ गई।

2. **गोदान की परंपरा और समकालीन उपन्यासः** प्रेमचंद के ''गोदान'' (१९३६) में गाँव और प्रकृति का जो चित्रण है, उसकी परंपरा इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में भी जारी है, किंतु एक भिन्न संदर्भ में। अब संकट केवल सामाजिक–आर्थिक नहीं, बल्कि पारिस्थितिक भी है जल संकट, मिट्टी की उर्वरता में कमी, पारंपरिक बीजों का लोप।

शहरीकरण और पारिस्थितिक अलगाव

शहर का चित्रण हिंदी उपन्यासों में एक विरोधाभासी रूप में उभरता है एक ओर विकास और अवसर का केन्द्र, दूसरी ओर प्रकृति से कटाव और पारिस्थितिक अलगाव का प्रतीक।

1. **काठगुलाब (मृदुला गर्ग, 1996/पुनर्मुद्रण):** (संदर्भ के लिए) मृदुला गर्ग के साहित्य में शहरी संवेदनशीलता और प्रकृति के बीच का द्वंद्व अक्सर दिखता है। वहीं, इक्कीसवीं सदी में अलका सरावगी का उपन्यास ''कलिकथाः वाया बाईपास'' कोलकाता जैसे महानगर में भीड़, प्रदूषण और मनुष्य के अकेलेपन के बीच प्रकृति की अनुपस्थिति को दर्शाता है। पात्रों की आत्मकेन्द्रिता शहर के कंक्रीट के जंगलों में प्रकृति के अभाव का प्रतिबिम्ब है।
2. **पार्थिव (संजीव):** संजीव के उपन्यास अक्सर कोयला खदानों और औद्योगिक शहरों के प्रदूषण और वहां घुटते जीवन को दर्शाते हैं। ये रचनाएं दिखाती हैं कि कैसे शहरीकरण प्रकृति को ''सजावटी'' और ''उपभोग्य'' वस्तु में तब्दील कर देता है।

स्त्री–पर्यावरण अन्तसंबंधः इकोफेमिनिस्ट परिप्रेक्ष्य

हिंदी उपन्यासों में स्त्री और प्रकृति के संबंधों का चित्रण अक्सर इकोफेमिनिस्ट सिद्धांतों को प्रतिध्वनित करता है।

1. **अल्मा कबूतरी (मैत्रेयी पुष्पा, 2000):** इस उपन्यास में बुंदेलखंड के कबूतरा समुदाय (विमुक्त जाति) की स्त्रियों और जंगल के बीच के संघर्ष और सहअस्तित्व को दिखाया गया है। यहाँ स्त्री का शरीर और जंगल दोनों ही सत्ता द्वारा शोषण का शिकार हैं। यह उपन्यास स्त्री की जिजीविषा को प्रकृति की प्रतिरोध क्षमता के समानांतर रखता है।
2. **चाक (मैत्रेयी पुष्पा, 1997/2000 के दशक में चर्चित):** इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा स्त्री की रचनात्मकता और धरती की उर्वरता के बीच समानता स्थापित करती हैं। 'सारंग' जैसी पात्र यह सिद्ध करती है कि गाँव की माटी और स्त्री की अस्मिता एक दूसरे से जुड़ी है। यहाँ मिट्टी निर्जीव पदार्थ नहीं, बल्कि एक सजीव, संवेदनशील तत्व है।

आदिवासी पारिस्थितिक ज्ञान और संघर्ष

आदिवासी समुदायों और उनके पारिस्थितिक ज्ञान का चित्रण इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरा है।

1. **मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ (महुआ माजी, 2012):** यह उपन्यास इक्कीसवीं सदी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो यूरेनियम खनन के कारण आदिवासियों पर हो रहे रेडिएशन के प्रभाव और पर्यावरण विनाश को दर्शाता है। यह उपन्यास ''जादूगोड़ा'' की त्रासदी पर आधारित है। यहाँ प्रकृति के प्रति आदिवासी दृष्टिकोण एंथ्रोपोसेंट्रिक नहीं, बल्कि बायोसेंट्रिक (जीव–केन्द्रित) है।
2. **जंगल जहाँ शुरू होता है (संजीव):** संजीव के उपन्यास आदिवासी विस्थापन और जंगल पर उनके अधिकारों की वकालत करते हैं। ये उपन्यास ''विकास'' और ''राष्ट्रहित'' के नाम पर आदिवासी भूमि पर कब्ज़े की राजनीति को उजागर करते हैं।

रूपात्मक प्रवृत्तियाँ एवं कथात्मक तकनीकें

डॉक्यूफिक्शन का प्रयोग

संकटों की तात्कालिकता और वास्तविकता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए एक प्रभावी साधन सिद्ध हुई है। 'काला पानी' जैसे उपन्यास में यह तकनीक विशेष रूप से प्रभावी है, जहाँ विस्थापन के आँकड़े और मानवीय कहानियाँ परस्पर गुंथी हुई हैं।

बहुकथात्मकता और बहु–दृष्टिकोण

पर्यावरणीय संकट अपने स्वभाव में ही बहुस्तरीय और अंतर्विरोधी होते हैं इनमें प्रकृति, अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति और नैतिकता एक–दूसरे में गुँथे रहते हैं। इसी जटिलता को प्रभावी ढंग से रूपायित करने के लिए इक्कीसवीं सदी के कई हिंदी उपन्यास बहुकथात्मकता (multiple narration) और बहु–दृष्टिकोण (multiple perspectives) की संरचना अपनाते हैं। इस तकनीक में एक ही घटना, परियोजना या संकट को अलग–अलग पात्रों की दृष्टि से देखा जाता है जैसे विकास अधिकारी, विस्थापित किसान/मजदूर, स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व, ठेकेदार वर्ग, पर्यावरण कार्यकर्ता, और कभी–कभी शहर का उपभोक्ता भी।

इस संदर्भ में अखिलेश का उपन्यास तीसरा तट (2018) उल्लेखनीय है, जहाँ नदी–संरक्षण का प्रश्न केवल एक पर्यावरणीय मुद्दा नहीं रहता, बल्कि तीन अलग–अलग पीढ़ियों और सामाजिक वर्गों के अनुभवों से होकर गुजरता है। अलग–अलग पीढ़ियाँ नदी को अलग अर्थ देती हैंकृकहीं वह जीविका और परंपरा का आधार है, कहीं स्मृति और सांस्कृतिक पहचान का स्रोत, और कहीं "संसाधन/प्रोजेक्ट"। इस बहु–दृष्टि के माध्यम से उपन्यास यह दिखाता है कि पर्यावरणीय मूल्य किसी एक सार्वभौमिक नैतिक नियम से नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति, वर्ग–अनुभव और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से निर्मित होते हैं।

समय की अरैखिक संरचना

मनीषा कुलश्रेष्ठ के वृक्ष (2015) में यह तकनीक विशेष अर्थवत्ता के साथ दिखाई देती है। यहाँ एक पेड़ के दीर्घ जीवनकाल (सैकड़ों वर्षों) को केन्द्र में रखकर कथन–समय का विस्तार किया जाता है। पेड़ की दृष्टि /उपस्थिति के सहारे पाठक यह महसूस करता है कि मनुष्य का जीवन–समय अत्यंत संक्षिप्त है, जबकि प्रकृति का समय गहरा, धीमा और स्मृतिधर्मी है। इससे उपन्यास मानव इतिहास और प्राकृतिक इतिहास के बीच एक तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य निर्मित करता है जिन निर्णयों को मनुष्य तत्काल लाभ के रूप में देखता है, वही निर्णय प्राकृतिक समय में दीर्घकालिक क्षति, असंतुलन और अवसाद के रूप में दर्ज हो सकते हैं। इस प्रकार अरैखिक समय–रचना पर्यावरणीय संकट को केवल "वर्तमान की समस्या" न मानकर उसकी ऐतिहासिक जड़ों और भविष्यगत परिणामों की संयुक्त समझ विकसित करती है।

प्रकृति की भाषाई अभिव्यक्ति

भाषाई स्तर पर, इन उपन्यासों में दो प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं:

1. **स्थानीय बोलियों और पारिस्थितिक शब्दावली का समावेश:** कई उपन्यास स्थानीय बोलियों के उन शब्दों को शामिल करते हैं जो स्थानीय पारिस्थितिकी के विशिष्ट पहलुओं को दर्शाते हैं। यह न केवल यथार्थवाद को बढ़ाता है बल्कि इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि पारिस्थितिक ज्ञान भाषाई विविधता में सन्निहित है।

2. **रूपकों और उपमाओं का पारिस्थितिकीकरण:** पारंपरिक साहित्यिक रूपकों को पारिस्थितिक संदर्भ दिया जाता है। उदाहरण के लिए, ''जड़ें'' शब्द केवल पेड़ों के लिए न होकर सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं के लिए भी प्रयुक्त होता है।

दृश्यात्मक तत्वों का समावेश

कुछ उपन्यास दृश्यात्मक तत्वों जैसे मानचित्र, रेखाचित्र, फोटोग्राफ्स का वर्णनात्मक उपयोग करते हैं। यद्यपि हिंदी उपन्यासों में वास्तविक चित्रों का समावेश सीमित है, किंतु विस्तृत वर्णनात्मक दृश्य रचना के माध्यम से

पारिस्थितिक परिदृश्यों को सजीव रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य: हिंदी एकोफिक्शन और वैश्विक संदर्भ

वैश्विक एकोफिक्शन के साथ समानताएँ

हिंदी उपन्यास वैश्विक एकोफिक्शन के साथ कई विषयवस्तुओं और दृष्टिकोणों में सहभागिता करते हैं:

1. **मानव–केन्द्रितता की आलोचना:** रिचर्ड पावर्स के ''द ओवरस्टोरी'' (2018) की भाँति, कई हिंदी उपन्यास भी मानवेतर दृष्टिकोण अपनाते हैं और मानव–केन्द्रित दृष्टि की सीमाओं को चुनौती देते हैं।
2. **डायस्टोपियन भविष्य की कल्पना:** मार्गरेट एटवुड के ''मैडएडैम'' त्रयी (2003–2013) की तरह, कुछ हिंदी उपन्यास भी पर्यावरणीय पतन के परिणामस्वरूप उत्पन्न डायस्टोपियन समाजों की कल्पना करते हैं, हालाँकि अक्सर भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में।

हिंदी एकोफिक्शन की विशिष्टताएँ

वैश्विक संदर्भों से तुलना करने पर हिंदी पर्यावरण उपन्यासों की कुछ स्पष्ट विशिष्टताएँ उभरकर सामने आती हैं:

1. **सामूहिकता बनाम व्यक्तिवाद:** पश्चिमी एकोफिक्शन अक्सर व्यक्तिगत नायकों और उनकी चेतना पर केंद्रित होता है, जबकि हिंदी उपन्यास सामुदायिक प्रतिक्रियाओं, सामूहिक संघर्षों और साझा भाग्यबोध पर अधिक बल देते हैं।
2. **आध्यात्मिक–दार्शनिक आधार:** हिंदी उपन्यास प्रकृति के प्रति आस्था और आध्यात्मिकता के पारंपरिक भारतीय दृष्टिकोणों जैसे अद्वैत वेदांत, जैन अहिंसा दर्शन, सूफी परंपराओं को आधुनिक पर्यावरणवाद से जोड़ते हैं।
3. **विकास की दुविधा:** भारत जैसे विकासशील देश के संदर्भ में, हिंदी उपन्यास विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच के तनाव को विशेष रूप से प्रस्तुत करते हैं, जो अक्सर पश्चिमी उपन्यासों में कम देखने को मिलता है।

तालिका 2: हिंदी और पश्चिमी एकोफिक्शन की तुलनात्मक विशेषताएँ

पहलू	पश्चिमी एकोफिक्शन (उदा. रिचर्ड पावर्स, मार्गरेट एटवुड)	हिंदी एकोफिक्शन (उदा. ममता कालिया, अलका सरावगी)
केन्द्रीय संघर्ष	प्रकृति बनाम संस्कृति; मानव बनाम प्रौद्योगिकी	विकास बनाम संरक्षण; परंपरा बनाम आधुनिकता
कथात्मक दृष्टिकोण	अक्सर व्यक्तिगत चेतना पर केंद्रित	सामुदायिक अनुभव और सामूहिकता पर बल
समय की संरचना	अक्सर भविष्योन्मुख, डायस्टोपियन	अतीत और वर्तमान का अंतर्संवाद, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
समाधान के स्रोत	वैज्ञानिक नवप्रवर्तन, तकनीकी समाधान	पारंपरिक ज्ञान, सामुदायिक व्यवस्थाएँ, आध्यात्मिक पुनर्जागरण
प्रकृति का प्रतिनिधित्व	कभी–कभी अमूर्त, विचारधारात्मक	अक्सर मूर्त, दैनिक जीवन में अंतर्निहित

चुनौतियाँ और आलोचनात्मक प्रश्न

सौंदर्यशास्त्र बनाम प्रचार का द्वन्द्व

हिंदी पर्यावरण उपन्यासों के समक्ष एक प्रमुख चुनौती कलात्मक अभिव्यक्ति और पर्यावरणीय संदेशवाहक के बीच संतुलन बनाए रखना है। कुछ आलोचकों का मानना है कि कुछ उपन्यास साहित्यिक सौंदर्य का बलिदान करके प्रचार सामग्री में बदल जाते हैं। सफल उपन्यास वे हैं जो इस संतुलन को बनाए रखते हैं जहाँ पर्यावरणीय चिंता

कथानक और चरित्र विकास के प्राकृतिक अंग के रूप में उभरती है, न कि बाह्य रूप से थोपे गए संदेश के रूप में।

शहरी पाठक और ग्रामीण यथार्थ का अंतर

अधिकांश हिंदी उपन्यासों का पाठक वर्ग शहरी, शिक्षित मध्यवर्ग है, जबकि इनमें चित्रित अधिकांश पर्यावरणीय संकट ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित हैं। इससे एक विडंबना उत्पन्न होती हैकृशहरी पाठक ग्रामीण पर्यावरण संकट को 'दूर का', 'पिछड़े' क्षेत्रों की समस्या के रूप में देख सकता है, अपने स्वयं के शहरी पर्यावरणीय पदचिह्नों (कार्बन फुटप्रिंट) से ध्यान हटाते हुए।

नॉस्टेल्जिया और यथार्थवाद के बीच तनाव

कई उपन्यास ग्रामीण जीवन और प्रकृति के साथ सामंजस्य को एक प्रकार के स्वर्णिम अतीत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि यह नॉस्टेल्जिया प्रभावशाली साहित्यिक उपकरण हो सकता है, किंतु इससे एक अवास्तविक, रूमानी छवि उत्पन्न होने का खतरा रहता है जो वास्तविक ग्रामीण जीवन की जटिलताओं गरीबी, सामाजिक संरचनाओं, सीमित संसाधनों को नज़रअंदाज़ कर सकती है।

निष्कर्ष

प्रमुख निष्कर्ष

इस शोध के विश्लेषण से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होते हैंः

1. **पर्यावरण विमर्श का सैद्धांतिक परिपक्वताः** इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय चिंता ने एक परिपक्व सैद्धांतिक आधार प्राप्त कर लिया है। ये केवल प्रकृति वर्णन या संरक्षण के नारे तक सीमित नहीं हैं, बल्कि पारिस्थितिकी, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीति के जटिल अंतर्संबंधों की पड़ताल करते हैं।
2. **सांस्कृतिक विशिष्टता और वैश्विक संवादः** हिंदी उपन्यास वैश्विक एकोफिक्शन के साथ संवाद स्थापित करते हुए भी अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता बनाए रखते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपराओं, सामूहिकता के मूल्यों और विकास की विशिष्ट चुनौतियों को इन रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
3. **विषयवस्तु और रूपात्मक विविधताः** पर्यावरणीय चिंता को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यासकारों ने विषयवस्तु और रूप दोनों स्तरों पर विविध प्रयोग किए हैं। विकास–विस्थापन से लेकर शहरी पारिस्थितिकी तक, और डॉक्यूफिक्शन से लेकर बहुकथात्मक संरचनाओं तक, यह विविधता हिंदी साहित्य की जीवंतता का प्रमाण है।
4. **मानवेतर एजेंसी की स्वीकृतिः** एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति मानवेतर सत्ताओं नदियों, पहाड़ों, वनों, जानवरों को सक्रिय एजेंट के रूप में प्रस्तुत करना है। यह दृष्टिकोण पारंपरिक मानव–केन्द्रित साहित्यिक परंपरा से एक महत्वपूर्ण विचलन है।

व्यावहारिक निहितार्थ

इस शोध के निष्कर्षों के निम्नलिखित व्यावहारिक निहितार्थ हैंः

1. **शैक्षिक पाठ्यक्रम में समावेशः** हिंदी साहित्य के पाठ्यक्रमों में पर्यावरणीय उपन्यासों को व्यवस्थित रूप से शामिल किया जाना चाहिए।
2. **अंतर–अनुशासनिक शोध को प्रोत्साहनः** साहित्य, पर्यावरण विज्ञान, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान के शोधकर्ताओं के बीच सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

भविष्य के लिए सुझाव

1. **अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययनः** हिंदी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं के पर्यावरण उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए।
2. **डिजिटल साहित्य और नए माध्यमः** डिजिटल माध्यमों पर उभर रहे पर्यावरण विमर्श का अध्ययन एक नया क्षेत्र है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुलश्रेष्ठ, म. (2011) *शालभंजिका.* सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. गर्ग, मृ. (1996/2003) *काठगुलाब.* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
3. जोशी, शे. (2008 संस्करण) *कोसी का घटवार.* (कहानी संग्रह) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. परसाई, ह. (2005 पुनर्मुद्रण) *तट की खोज.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. पुष्पा, मै. (1997) *चाक.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. माजी, म. (2012) *मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ.* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
7. रणेन्द्र (2009) *ग्लोबल गाँव के देवता.* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
8. शर्मा, ना. (2005) *कुइयाँजान.* सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. सरावगी, अलका (1998) *कलिकथा: वाया बाईपास.* आधार प्रकाशन, पंचकूला।
10. सिंह, नामवर (2006) *कविता के नए प्रतिमान.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. द्विवेदी, रमेशचंद्र (2014) *पर्यावरण और साहित्य.* विद्या प्रकाशन, कानपुर।
12. कुमार, मुकुल (2019) हिंदी उपन्यास में पारिस्थितिकीय चेतना. *अक्षरा,* 45(2), 78–94।
13. रणेन्द्र (2009) *ग्लोबल गाँव के देवता,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
14. पुष्पा, मैत्रेयी (2000) *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

****